2 जयशंकर प्रसाद

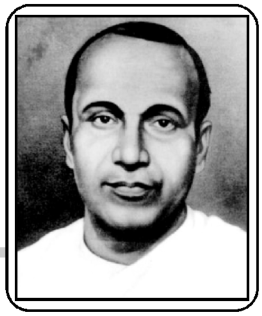

➡ व्यक्तित्व

हिन्दी में छायावादी काव्य के प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद का जन्म 1889 ई0 में वाराणसी में हुआ। बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न जयशंकर प्रसाद ने 'सुँघनी साहु' नामक प्रसिद्ध एवं वैभवसम्पन्न एक ऐसे परिवार में जन्म लिया जिसमें विद्वानों एवं कलाकारों को समुचित सम्मान दिया जाता था। उनके घर में शिव की उपासना की जाती थी। पारिवारिक विवशताओं के कारण कक्षा आठ तक ही वे स्कूली शिक्षा प्राप्त कर सके। आगे चलकर स्वाध्यायी प्रसाद ने घर पर ही संस्कृत के गहन अनुशीलन के अतिरिक्त हिन्दी, उर्दू, बंगला आदि का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। पारिवारिक एवं आर्थिक संकटों में ग्रस्त साहसी जयशंकर प्रसाद अनवरत रूप से साहित्य-सर्जना में रत रहे। उनकी गणना मूर्धन्य साहित्यकारों में की जाती है। वे शीर्षस्थ 'कवि' होने के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार तथा निबन्ध-लेखक भी थे। वस्तुतः जयशंकर प्रसाद ने स्वानुभूति एवं गहन चिन्तन को साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा विविध कला-कृतियों की रत्न-राशि से हिन्दी-भाषा एवं साहित्य के भण्डार को समृद्ध एवं समुन्नत बनाया। इनकी मृत्यु 1937 ई0 में हुई।

➡ कृतित्व

जयशंकर प्रसाद के पाँच कहानी-संग्रह हैं—**छाया, प्रतिध्वनि, आकाशदीप, आँधी** और **इन्द्रजाल**। आपने **कंकाल, तितली** तथा **इरावती** (अपूर्ण) उपन्यास भी लिखे हैं। **राज्यश्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी** आदि आपकी प्रसिद्ध **नाट्य-कृतियाँ** हैं। **'कामायनी'** आपका विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य है। स्फुट काव्य तथा निबन्ध के क्षेत्र में भी आपका योगदान अविस्मरणीय है।

➡ कथा-शिल्प एवं भाषा-शैली

प्रसाद की कहानियों की सांस्कृतिक चेतना तथा उनके मनोवैज्ञानिक एवं भावात्मक चित्रण पाठक के मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं। उनकी कहानी-रचना का धरातल साहित्यिक एवं कलात्मक है। उनकी कहानियाँ मानवता की उद्‌बोधक हैं। छायावादी कवि होने के कारण उनकी अधिकतर कहानियों में गहरी भावमयता और सूक्ष्मता की विशिष्टता मिलेगी। नाटकीय प्रतिभा एवं भावुक हृदय के अपूर्व संगम से उनकी अनेक कहानियाँ विशेष प्रभावशाली हो गयी हैं। आधार ऐतिहासिक हो अथवा काल्पनिक—काव्यतत्त्व उनकी अधिकांश कहानियों में समाहित रहता है। वस्तुतः हिन्दी-कहानी के विकास को नवीन दिशा देने में जयशंकर प्रसाद का अपूर्व योग है।

प्रसाद के कथानक आद्यन्त प्रवाहपूर्ण एवं चित्ताकर्षक है। कथावस्तु में सांस्कृतिक चेतना, प्रेम, कर्त्तव्य-निष्ठा, चरित्रगत सौन्दर्य आदि तत्त्व उभर कर आये हैं। प्रकृति के काव्यात्मक चित्र भी कथा-वस्तु के सौन्दर्य को निखारने में सफल हुए हैं। उनकी कहानियों में विविध प्रकार के पात्रों की सृष्टि हुई है। उन्होंने चरित्र-चित्रण में मानवीय गरिमा को महत्त्व दिया है तथा पात्रों के व्यक्तित्व को मार्मिकता से उभारा है। पात्रों की भावुकता उनको सक्रिय बनाती है तथा मानसिक संघर्षों में विवेक ऊपर उठकर कर्त्तव्य का मार्ग निर्धारित करता है। उनके कथोपकथन मार्मिक, सजीव एवं प्रभावशाली हैं। वे कहानी को रोचक बनाते हुए उसके स्वाभाविक विकास में योग देते हैं। उनकी कहानियों में एक काव्यात्मक वातावरण सर्वत्र छाया रहता है। उनकी प्रसिद्ध कहानियों के नाम हैं—**ग्राम, आकाशदीप, इन्द्रजाल, सलीम, आँधी** आदि।

प्रसाद की कहानियों की भाषा परिष्कृत, कलात्मक एवं संस्कृतनिष्ठ है तथा शैली ललित, नाटकीय एवं काव्यमयी है। स्थिति एवं पात्रों की मनोदशा के कलापूर्ण चित्रण तथा कथावस्तु का सौन्दर्य उभारने में उपयुक्त एवं कवित्वपूर्ण वातावरण की योजना प्रसाद जी की कहानी-कला का निजी वैशिष्ट्य है।

प्रसाद जी का 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की प्रतिष्ठा करनेवाला जीवन-दर्शन उनकी कहानियों के उद्देश्य को निर्धारित एवं प्रभावित करता रहता है।

●●●

आकाशदीप

(एक)

"बंदी!"

"क्या है? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहीं से एक कंबल डालकर कोई शीत से मुक्त करता।"

"आँधी की सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बंधन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बंदी हो?"

"हाँ, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा?"

"मिल जायेगा। पोत से संबद्ध रज्जु काट सकोगे?"

"हाँ।"

समुद्र में हिलोरें उठने लगीं। दोनों बंदी आपस में टकराने लगे। पहले बंदी ने अपने को स्वतंत्र कर लिया। दूसरे का बंधन खोलने का प्रयत्न करने लगा। लहरों के धक्के एक-दूसरे को स्पर्श से पुलकित कर रहे थे। मुक्ति की आशा-स्नेह का असंभावित आलिंगन। दोनों ही अंधकार में मुक्त हो गये। दूसरे बंदी ने हर्षातिरेक से उसको गले से लगा लिया। सहसा उस बंदी ने कहा—"यह क्या? तुम स्त्री हो?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है?"—अपने को अलग करते हुए स्त्री ने कहा।

"शस्त्र कहाँ है—तुम्हारा नाम?"

"चम्पा।"

तारक-खचित नील अंबर और नील समुद्र के अवकाश में पवन ऊधम मचा रहा था। अंधकार से मिलकर पवन दुष्ट हो रहा था। समुद्र में आंदोलन था। नौका लहरों में विकल थी। स्त्री सतर्कता से लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविक के शरीर से टकराती हुई सावधानी से उसका कृपाण निकालकर, फिर लुढ़कते हुए, बंदी के समीप पहुँच गई। सहसा पोत से पथ-प्रदर्शक ने चिल्लाकर कहा—"आँधी!"

आपत्तिसूचक तूर्य बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बंदी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसी ने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बंदी लुढ़ककर उस रज्जु के पास पहुँचा, जो पोत से संलग्न थी। तारे ढँक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आँधी पिशाचिनी के समान नाव को अपने हाथों में लेकर कंदुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटके के साथ ही नाव स्वतंत्र थी। उस संकट में भी दोनों बंदी खिलखिलाकर हँस पड़े। आँधी के हाहाकार में उसे कोई न सुन सका।

(दो)

अनंत जलनिधि में उषा का मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरों की कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शांत था। नाविकों ने देखा, पोत का पता नहीं। बंदी मुक्त हैं।

नायक ने कहा—"बुद्धगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?"

कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्त ने कहा—"इसने।"

नायक ने कहा—"तो तुम्हें फिर बंदी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जल में होगा—नायक! अब इस नौका का स्वामी मैं हूँ।"

"तुम? जलदस्यु बुद्धगुप्त? कदापि नहीं।"—चौंककर नायक ने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पा ने इसके पहले उस पर अधिकार कर लिया था। वह क्रोध से उछल पड़ा।

"तो तुम द्वंद्वयुद्ध के लिए प्रस्तुत हो जाओ; जो विजयी होगा, वह स्वामी होगा।"—इतना कहकर बुद्धगुप्त ने कृपाण देने का संकेत किया। चम्पा ने कृपाण नायक के हाथ में दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गतिवाले थे। बड़ी निपुणता से बुद्धगुप्त ने अपना कृपाण दाँतों से पकड़कर अपने दोनों हाथ स्वतंत्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मय से देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुद्धगुप्त ने लाघव से नायक का कृपाण वाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुँकार से दूसरा हाथ डाल, उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभात की किरणों में बुद्धगुप्त का विजयी कृपाण उसके हाथों में चमक उठा। नायक की कातर आँखें प्राण-भिक्षा माँगने लगीं। बुद्धगुप्त ने कहा—"बोलो, अब स्वीकार है कि नहीं?"

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेव की शपथ। मैं विश्वासघात नहीं करूँगा।" बुद्धगुप्त ने उसे छोड़ दिया।

चम्पा ने युवक जलदस्यु के समीप आकर उसके क्षतों को अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करों से वेदना-विहीन कर दिया। बुद्धगुप्त के सुगठित शरीर पर रक्त-बिन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्त ने पूछा—"हम लोग कहाँ होंगे?"

"बालीद्वीप से बहुत दूर, सम्भवतः एक नवीन द्वीप के पास, जिसमें अभी हम लोगों का बहुत कम आना-जाना होता है। सिंहल के वणिकों का वहाँ प्राधान्य है।"

"कितने दिनों में हम लोग वहाँ पहुँचेंगे?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिन में। तब तक के लिए खाद्य का अभाव न होगा।"

सहसा नायक ने नाविकों को डाँड़ लगाने की आज्ञा दी और स्वयं पतवार पकड़कर बैठ गया। बुद्धगुप्त के पूछने पर उसने कहा—"यहाँ एक जलमग्न शैल-खण्ड है। सावधान न रहने से नाव के टकराने का भय है।"

(तीन)

"तुम्हें इन लोगों ने बंदी क्यों बनाया?"

"वणिक मणिभद्र की पाप-वासना ने।"

"तुम्हारा घर कहाँ है?"

"जाह्नवी के तट पर। चम्पा-नगरी की एक क्षत्रिय बालिका हूँ। पिता इसी मणिभद्र के यहाँ प्रहरी का काम करते थे। माता का देहावसान हो जाने पर मैं भी पिता के साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरस से समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमण के समय मेरे पिता ने ही सात दस्युओं को मारकर जल-समाधि ली। एक मास हुआ, मैं इस नील नभ के नीचे, नील जलनिधि के ऊपर, एक भयानक अनंतता में निस्सहाय हूँ–अनाथ हूँ। मणिभद्र ने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियाँ सुनाईं। उसी दिन से बंदी बना दी गई।"—चम्पा रोष से जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्ति का एक क्षत्रिय हूँ, चम्पा! परन्तु दुर्भाग्य से जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूँ। अब तुम क्या करोगी?"

"मैं अपने अदृष्ट को अनिर्दिष्ट ही रहने दूँगी। वह जहाँ ले जाय।"—चम्पा की आँखें निस्सीम प्रदेश में निरुद्देश्य थीं। किसी आकांक्षा के लाल डोरे न थे। धवल अपांगों में बालकों के सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु भी उसे देखकर काँप गया। उसके मन में एक संभ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवन की पहली लहरों को जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर बिम्बमयी राग-रंजित संध्या थिरकने लगी। चंपा के असंयत कुंतल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त दस्यु ने देखा, अपनी महिमा में अलौकिक एक वरुण? बालिका! वह विस्मय से अपने हृदय को टटोलने लगा। उसे एक नयी वस्तु का पता चला। वह थी कोमलता।

उसी समय नायक ने कहा—"हम लोग द्वीप के पास पहुँच गये।"

बेला से नाव टकराई। चम्पा निर्भीकता से कूद पड़ी। माँझी भी उतरे। बुद्धगुप्त ने कहा—"जब इसका कोई नाम नहीं है, तो हम लोग इसे चम्पा-द्वीप कहेंगे।"

चम्पा हँस पड़ी।

(चार)

पाँच बरस बाद......

शरद के धवल नक्षत्र नील गगन में झिलमिला रहे थे। चंद्र की उज्ज्वल विजय पर अंतरिक्ष में शरदलक्ष्मी ने आशीर्वाद के फूलों और खीलों को बिखेर दिया।

चंपा के एक उच्चसौध पर बैठी हुई तरुणी चंपा दीपक जला रही थी। बड़े यत्न से अभ्रक की मंजूषा में दीप धरकर उसने अपनी सुकुमार उँगलियों से डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली-भोली आँखें उसे ऊपर चढ़ते बड़े हर्ष से देख रही थीं। डोरी धीरे-धीरे खींची गई। चंपा की कामना थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रों से हिलमिल जाय; किन्तु वैसा होना असम्भव था। उसने आशा-भरी आँखें फेर लीं।

सामने जल-राशि का रजत श्रृंगार था। वरुण बालिकाओं के लिए लहरें हीरे और नीलम की क्रीड़ा शैल-मालाएँ बना रही थीं—और वे मायाविनी छलनाएँ, अपनी हँसी का कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर-दूर से धीवरों का वंशी-झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चंपा ने देखा कि तरल संकुल जल-राशि में उसके कंडील का प्रतिबिम्ब अस्त-व्यस्त था। वह अपनी पूर्णता के लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसी को पास न देखकर पुकारा—"जया!"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई। वह जंगली थी। नील नभ-मण्डल से मुख में शुद्ध नक्षत्रों की पंक्ति के समान उसके दाँत हँसते ही रहते। वह चंपा को रानी कहती; बुद्धगुप्त की आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।" चंपा ने कहा। जया चली गई।

दूरागत पवन चंपा के अंचल में विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदय में गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुष ने उसकी पीठ पर हाथ रख चमत्कृत कर दिया। उसने फिरकर कहा—"बुद्धगुप्त!"

"बावली हो क्या? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है?"

"क्षीरनिराधिशायी अनंत की प्रसन्नता के लिए क्या दासियों से आकाशदीप जलवाऊँ?"

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है?"

"हाँ, वह कभी भटकते हैं, भूलते हैं; नहीं तो, बुद्धगुप्त को इतना ऐश्वर्य क्यों देते?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीप की अधीश्वरी चंपारानी!"

"मुझे इस बंदीगृह से मुक्त करो। अब तो बाली, जावा और सुमात्रा का वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकार में है महानाविक! परन्तु मुझे उन दिनों की स्मृति सुहावनी लगती है, जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पा के उपकूल में पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे—इस जल में अगणित बार हम लोगों की तरी आलोकमय प्रभात में तारिकाओं की मधुर ज्योति में थिरकती थी। बुद्धगुप्त! उस विजन अनंत में जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम-तुम परिश्रम से थककर पालों में शरीर लपेटकर एक-दूसरे का मुँह क्यों देखते थे? वह नक्षत्रों की मधुर छाया—"

"तो चंपा! अब उससे भी अच्छे ढंग से हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राण-दात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं-नहीं, तुमने दस्युवृत्ति छोड़ दी परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान् के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यंग्य कर रहे हो। नाविक! उस प्रचण्ड आँधी में प्रकाश की एक-एक किरण के लिए हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है, जब मैं छोटी थी, मेरे पिता नौकरी पर समुद्र में जाते थे—मेरी माता, मिट्टी का दीपक बाँस की पिटारी में भागीरथी के तट पर बाँस के साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती—'भगवान्! मेरे पथ-भ्रष्ट नाविक को अंधकार में ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों बाद लौटते तो कहते—'साध्वी! तेरी प्रार्थना से भगवान् ने भयानक संकटों में मेरी रक्षा की है।' वह गदगद् हो जाती। मेरी माँ? आह नाविक! यह उसी की

पुण्यस्मृति है। मेरे पिता, वीर पिता की मृत्यु के निष्ठुर कारण, जल-दस्यु! हट जाओ।''—सहसा चंपा का मुख क्रोध से भीषण होकर रंग बदलने लगा। महानाविक ने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठाकर हँस पड़ा।

''यह क्या, चंपा? तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो।''—कहता हुआ चला गया। चंपा मुट्‌ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

(पाँच)

निर्जन समुद्र के उपकूल में वेला में टकराकर लहरें बिखर जाती थीं। पश्चिम का पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शांत-गम्भीर हलचल में जलनिधि विचार में निमग्न था। वह जैसे प्रकाश की उन्मलिन किरणों से विरक्त था।

चंपा और जया धीरे-धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गईं। तरंग से उठते हुए पवन ने उनके वसन को अस्त-व्यस्त कर दिया। जया के संकेत से एक छोटी-सी नौका आयी। दोनों के उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चंपा मुग्ध-सी समुद्र के उदास वातावरण में अपने को मिश्रित कर देना चाहती थी।

''इतना जल! इतनी शीतलता! हृदय की प्यास न बुझी। पी सकूँगी? नहीं! तो जैसे वेला में चोट खाकर सिंधु चिल्ला उठता है, उसी के समान रोदन करूँ? या जलते हुए स्वर्ण-गोलक सदृश अनंत जल में डूबकर बुझ जाऊँ?''—चंपा के देखते-देखते पीड़ा और ज्वलन से आरक्त बिंब धीरे-धीरे सिंधु में चौथाई-आधा, फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ निःश्वास लेकर चंपा ने मुँह फेर लिया। देखा, तो महानाविक का बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्त ने झुककर हाथ बढ़ाया। चंपा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पास-पास बैठ गये।

''इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जलमग्न शैलखण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ़ जाती चंपा तो?''

''अच्छा होता, बुद्धगुप्त! जल में बंदी होना कठोर प्राचीरों से तो अच्छा है।''

''आह चंपा, तुम कितनी निर्दय हो! बुद्धगुप्त को आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिये नये द्वीप की सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नये राज्य खोज सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो.....। कहो, चंपा! वह कृपाण से अपना हृदय-पिंड निकाल अपने हाथों अतल जल में विसर्जन कर दे।'' महानाविक जिसके नाम से बाली, जावा और चंपा का आकाश गूँजता था, पवन थर्राता था, घुटनों के बल चंपा के सामने छलछलाई आँखों से बैठा था।

सामने शैलमाला की चोटी पर, हरियाली में विस्तृत जल-देश में, नील पिंगल संध्या, प्रकृति की सहृदय कल्पना, विश्राम की शीतल छाया स्वप्नलोक का सृजन करने लगी। उस मोहिनी के रहस्यपूर्ण नीलजाल का कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरा से सारा अंतरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलों में भर उठी। उस सौरभ से पागल चंपा ने बुद्धगुप्त के दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिंगन हुआ, जैसे क्षितिज में आकाश और सिंधु का किन्तु उस परिरम्भ में सहसा चैतन्य होकर चंपा ने अपनी कंचुकी से एक कृपाण निकाल लिया।

''बुद्धगुप्त! आज मैं अपने प्रतिशोध का कृपाण अतल जल में डुबा देती हूँ। हृदय ने छल किया, बार-बार धोखा दिया।''—चमककर वह कृपाण समुद्र का हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया।

''तो आज से मैं विश्वास करूँ, क्षमा कर दिया गया?''—आश्चर्यकंपित कंठ से महानाविक ने पूछा।

''विश्वास? कदापि नहीं, बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसी ने धोखा दिया, तब मैं कैसे कहूँ? मैं तुम्हें घृणा करती हूँ, फिर भी तुम्हारे लिये मर सकती हूँ। अँधेर है जलदस्यु। तुम्हें प्यार करती हूँ।''—चंपा रो पड़ी।

वह स्वप्नों की रंगीन संध्या, तम से अपनी आँखें बंद करने लगी थी। दीर्घ निःश्वास लेकर महानाविक ने कहा—''इस जीवन की पुण्यतम घड़ी की स्मृति से एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा, चंपा! यहीं उस पहाड़ी पर। संभव है कि मेरे जीवन की धुँधली संध्या उससे आलोकपूर्ण हो जाय।''

(छह)

चंपा के दूसरे भाग में एक मनोरम शैलमाला थी। वह बहुत दूर तक सिंधु-जल में निमग्न थी। सागर का चंचल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैलमाला पर चंपा के आदि-निवासियों का समारोह था। उन सबों ने चंपा

को वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्ति के बहुत से सैनिक नाविकों की श्रेणी में वन-कुसुम-विभूषिता चंपा शिविका रूढ़ होकर जा रही थी।

शैल के एक ऊँचे शिखर पर चंपा के नाविकों को सावधान करने के लिए सुदृढ़ दीप-स्तंभ बनवाया गया था। आज उसी का महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तंभ के द्वार पर खड़ा था। शिविका से सहायता देकर चंपा को उसने उतारा। दोनों ने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियों में कुसुम-भूषण से सजी वन-बालाएँ फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप-स्तंभ की ऊपरी खिड़की से यह देखती हुई चंपा ने जया से पूछा—"यह क्या है जया? इतनी बालिकाएँ कहाँ से बटोर लायी?"

"आज रानी का ब्याह है न?"—कहकर जया ने हँस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधि की ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चंपा ने पूछा—"क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो यह सच भी हो सकता है, चंपा! कितने वर्षों से मैं ज्वालामुखी को अपनी छाती में दबाये हूँ।"

"चुप रहो, महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कंगाल जानकर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा?"

"मैं तुम्हारे पिता का घातक नहीं हूँ, चंपा! वह एक-दूसरे दस्यु के शस्त्र से मरे!"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त, वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरता में भी कितने महान् होते!"

जया नीचे चली गई थी। स्तम्भ के संकीर्ण प्रकोष्ठ में बुद्धगुप्त और चंपा एकांत में एक-दूसरे के सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्त ने चंपा के पैर पकड़ लिये। उच्छ्वसित शब्दों में वह कहने लगा—"चंपा, हम लोग जन्मभूमि-भारतवर्ष से कितनी दूर इन निरीह प्राणियों में इंद्र और शची के समान पूजित हैं पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगों को अभी तक अलग किये है। स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश! वह महिमा की प्रतिमा! मुझे वह स्मृति नित्य आकर्षित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कंगाल हूँ! मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्श से चंद्रकांतमणि की तरह द्रवित हुआ।"

"चंपा! मैं ईश्वर को नहीं मानता, मैं पाप को नहीं मानता, मैं दया को नहीं समझ सकता, मैं उस लोक में विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदय के एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिका के समान मेरे शून्य में उदित हो गई हो। आलोक की एक कोमल रेखा इस निविड़ तम में मुस्कराने लगी। पशु-बल और धन के उपासक के मन में किसी शांत और एकांत कामना की हँसी खिलखिलाने लगी; पर मैं न हँस सका।"

"चलोगी चंपा? पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लादकर राजरानी-सी जन्मभूमि अंक में? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारत के लिए प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्त की आज्ञा सिंधु लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोत-पुंज को दक्षिण पवन के समान भारत में पहुँचा देगी। आह चंपा! चलो।"

चंपा ने उसके हाथ पकड़ लिये। किसी आकस्मिक झटके ने एक पल भर के लिए दोनों के अधरों को मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चंपा ने कहा—"बुद्धगुप्त! मेरे लिये सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ, विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे, छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा, चंपा! यहाँ रहकर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूँ-इसमें सन्देह है। आह! इन लहरों में मेरा विनाश हो जाय।" महानाविक के उच्छ्वास में विकलता थी। फिर उसने पूछा—"तुम अकेली यहाँ क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी-कभी इस दीप-स्तंभ पर से आलोक जलाकर अपने पिता की समाधि का इस जल में अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ, मुझे भी इसी में जलना होगा, जैसे आकाश-दीप।"

(सात)

एक दिन स्वर्ण-रहस्य के प्रभात में चंपा ने अपने दीप-स्तम्भ पर से देखा—सामुद्रिक नावों की एक श्रेणी चंपा का उपकूल छोड़कर पश्चिम-उत्तर की ओर महा जलव्याल के समान संतरण कर रही है। उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहले की कथा है। चंपा आजीवन उस दीप-स्तम्भ में आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन, दीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवा की देवी की समाधि-सदृश पूजा करते थे।

एक दिन काल के कठोर हाथों ने उसे भी अपनी चंचलता से गिरा दिया।

अभ्यास प्रश्न

1. कहानी-कला की दृष्टि से 'आकाशदीप' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
2. भाषा-शैली की दृष्टि से 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।
3. श्रेष्ठ कहानी की विशेषताएँ बताते हुए 'आकाशदीप' कहानी का मूल्यांकन कीजिए।
4. 'आकाशदीप' कहानी के माध्यम से प्रसादजी ने कौन-सा आदर्श रखना चाहा है?
5. "प्रसाद की नाटकीय एवं कवित्वपूर्ण भाषा ने 'आकाशदीप' कहानी को अत्यन्त प्रभावपूर्ण बना दिया है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।
6. चंपा ने बुद्धगुप्त के निवेदन को क्यों ठुकराया? क्या चम्पा के हृदय में बुद्धगुप्त के लिए कोई स्थान नहीं था? अपने विचार व्यक्त कीजिए।
7. 'आकाशदीप' कहानी के कथा-संगठन पर प्रकाश डालिए।
8. 'अन्तर्द्वन्द्व' शब्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए चम्पा के अन्तर्द्वन्द्व का उल्लेख कीजिए।
9. 'आकाशदीप' कहानी के शीर्षक की सार्थकता बताइए।
10. 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर लेखक का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
11. 'आकाशदीप' कहानी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
12. 'आकाशदीप' कहानी में सजीव ऐतिहासिक वातावरण की सृष्टि किस प्रकार की गयी है?
13. सिद्ध कीजिए 'आकाशदीप' कहानी की सफलता उसमें निहित वैचारिक द्वन्द्व है।
14. 'आकाशदीप' कहानी की कथावस्तु का उल्लेख करते हुए उसके नामकरण की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
15. 'आकाशदीप' कहानी का कथासार अपने शब्दों में लिखिए।
16. कहानी तत्त्वों के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।
17. जयशंकर प्रसाद की संकलित कहानी के आधार पर 'चम्पा' का चरित्र-चित्रण कीजिए।
18. 'आकाशदीप' कहानी की कथावस्तु व शीर्षक की समीक्षा कीजिए।
19. 'आकाशदीप' कहानी की विषय-वस्तु संक्षेप में लिखिए।
20. 'आकाशदीप' कहानी के आधार पर उसके नायक की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
21. 'आकाशदीप' कहानी के मुख्य पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।
22. 'आकाशदीप' कहानी के नायक का चरित्र-चित्रण कीजिए।
23. 'आकाशदीप' कहानी के नायक की चारित्रिक विशेषताएँ बताइए।
24. कहानी कला के तत्त्वों के आधार पर 'आकाशदीप' कहानी की समीक्षा कीजिए।